International Journal of Education and Science Research Review
Volume-2, Issue-1 February- 2015
E-ISSN 2348-6457
P-ISSN 2348-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

भारतीय राजनीति में श्री अरविंद का राजनीतिक आदर्शों का संक्षिप्त विवरण

Dr. Anup Pradhan
Director Research
Sunrise University
Alwar, Rajasthan

सार
चाहे कोई भी देश या राष्ट्र क्यों न हो, जब राष्ट्रीय उत्थान का काम आरंम्भ होता है तब उसके लिये एक बृहत् और उदार राजनीतिक आदर्श की आवश्यकता होती है। यदि महात्मा रूसो की साम्यनीति का प्रचार न होता तो फ्रांसीसी क्रांति की राष्ट्रव्यापी आवेगमयी उदात्त आकांक्षा अर्धमृत फ्रांस को जगा सारे यूरोप को प्लावित न कर पाती। मानवमात्र की स्वभावजात स्वाधीनताप्राप्ति की कामना के लिये अमेरिका यदि लालायित न होता तो संयुक्त राष्ट्र का जन्म ही न होता। ऋषि तुल्य मेजिनी यदि आज के इटली के हृदय में उच्च आशा और उदार आदर्श का संचार नहीं करते तो वह पतित राष्ट्र गुलामी से कभी भी उबर न सकता। अनुच्च और संकीर्ण आदर्श, क्षुद्र आशा, क्षुद्र उद्देश्य, तुच्छ सावधानी और भीरुता एवं अदूरदर्शी व साहसविमुख नेतागण– ये सारे हेय उपकरण कभी भी राष्ट्रीय शक्ति को वर्धित करने के उपयुक्त साधन नहीं हो सकते। ऐसे क्षुद्र साधनों द्वारा कभी भी कोई राष्ट्र महानता के ऊंचे सोपान पर नहीं उठा। निरीहो नाश्रुते महत– जिनकी आशा–आकांक्षा क्षुद्र है वे कभी महानता का उपभोग नहीं कर सकते, हमारे राजनीतिज्ञों को महाभारत की यह उक्ति सदा याद रखनी चाहिये।

श्री अरविन्द और भारत
श्रीअरविन्द जमीन के टुकड़े को भारत नहीं मानते। उनकी दृष्टि में भारत मां एक देवी है और आज उसका मुख्य काम है प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभूति को अपने पूरे वैभव के साथ प्राप्त करना, इसे आध्यात्मिक धारा से सींचकर नये दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान आदि को जन्म देना और भारतीयता के प्रकाश में आधुनिक समस्याओं को हल करना और एक आध्यात्मिक समाज की स्थापना करना। स्वाधीन होने के बाद भारतीय लोगों ने भारतीयता की काफी हदतक उपेक्षा की है। हम अपनी समस्याओं का हल आधुनिक, अर्थात्, पाश्चात्य ढंग से करना चाहते हैं। चाहे शिक्षा की समस्या हो या स्वास्थ्य की, राजनीतिक प्रश्न हो या आर्थिक, हम हर चीज के लिये यही देखते हैं कि इस विषय में रूस ने, अमरीका ने तथा अन्य "उन्नत" कहे जानेवाले देशों ने क्या कहा और किया है। परंतु हम भूल जाते है कि भारत की समस्याओं का हल भारत ही कर सकता है।
श्रीअरविन्द का कहना है कि आजकल के वैज्ञानिक युग से पहले प्राचीन भारत की तुलना में किसी देश ने भौतिक विज्ञान में इतनी सफलता नहीं पायी थी। भारतीय गणित, ज्योतिष, रसायन, चिकित्सा, शल्य–चिकित्सा आदि अनेकानेक विषयों में हिंदुस्तान ने औरों का मार्ग–दर्शन किया है। गैलिलियो से बहुत पहले भारत में "चला प्रथ्वी स्थिरा भाति"– प्रथ्वी चलती है, परंतु स्थिर दिखायी देती है– कहा जा चुका था। तेरहवीं शताब्दी के आस–पास भारतीय भौतिकशास्त्री मानों सो गये।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि हर देश की कुछ अपनी विशेषता होती है, जैसे प्राचीन रोम योद्धाओं, शासकों और राजनीतिज्ञों का देश था। इसी प्रकार प्राचीन भारत ऋषियों का देश रहा है। इस देश में हमेशा ऋषि ही सर्वोपरि रहें है और वीर पुरूष उनमें एक कदम पीछे रहते थे। और यह परंपरा प्राचीन काल में ही समाप्त नहीं हो गयी; बुद्ध, महावीर आदि से लेकर शंकर, रामानुज, चैतनय, नानक, कबीर, रामदास, तुकाराम, रामकृष्ण, विवेकानंद, दयानंद आदि और दूसरी ओर चंद्रगुप्त, चाणक्य, अशोक, खालसा आदि हमारे सामने आते हैं। यह सारा काम भी घास के पुतलों या निष्प्राण स्वप्नसेवियों के वश का नहीं है। जो धारा हमें रामायण और महाभारत में "दिखायी देती है" वही जीवन के हर क्षेत्र में बह रही थी।
हम प्राचीन भारत की महानता का रहस्य उसकी ऊपरी बातों को देखकर नहीं लगा सकते। उन्होंने अपनी शिक्षा को ब्रह्मचर्य की दृढ़ नींव पर खड़ा किया था। शरीर के अदंर जितनी शक्ति और ऊर्जा बचती उसे बुद्धि की सेवा में लगाया जाता था। इसीसे उनकी मेघा,–ग्रहणशक्ति, घी– बुद्धि की सूक्ष्मता, स्मरणशक्ति, और सृजनात्मक अन्वेषण–शक्ति का विकास होता था। अध्यापक का कर्तव्य था कि विद्यार्थी के अंदर से तमस् को निकाले, रजस् पर लगाम लगाये और सत्त्व को जगाये। ब्रह्मचर्य और सात्त्विक विकास ने ही भारत के मस्तिष्क का निर्माण किया और योग ने उसे पूर्णता प्रदान की।
श्री अरविन्द कहते हैं कि हमारी शिक्षा–पद्धति के कारण हमारे विशाल मन, चरित्र, दृष्टि, स्वाभाविक शक्ति के स्थान पर भद्दे, भोंडे यूरोपीय जड़वाद तथा व्यापारी दृष्टि की प्रतिष्ठा हो गयी है। हमारी शिक्षा ने हमें प्राचीन बुद्धि और आध्यात्मिक से दूर कर दिया है। आज सबसे अधिक आवश्यकता है मौलिकता, अभीप्सा और शक्ति की। हमें अपने मानस को ऊंचा उठाना होगा, अपने स्वभाव के आभिजात्य और उदारता को फिर से लाना होगा, आर्य–दृष्टि से फिर से संसार को सुन्दर और भव्य बनाना होगा।
हमारे आदर्श ऊंचे हैं और उनका चरितार्थ होना उतना ही निश्चित है जितना कल का सूर्योदय । ऊंचे आदर्श की ओर रेंगकर नहीं जाया जा सकता। उसके लिये हमें उड़ान लेनी होगी, अपनी बलि देनी होगी, भारत का उत्थान केवल भारत के लिये नहीं, समस्त संसार के लिये आवश्यक है। भारत सारे जगत् की समस्याओं को हल करने के लिये प्रयोगशाला हे। आज चाहे जितना

International Journal of Education and Science Research Review
Volume-2, Issue-1 February- 2015 P-ISSN 2348-1817, E- ISSN 2348-6457
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

अंधकार हो, कल ज्योतिर्मय होगा। श्रीअरविन्द ने हमें विश्वास दिलाया है कि भारतीय संस्कृति ऐसी कच्ची नहीं है कि उसे नष्ट किया जा सके। वह हजारों वर्षो से आघात सहती आ रही है और फिर भी दुर्बल नहीं है। उसका भविष्य निश्चित रूप से उज्जवल है।

भारतीय संस्कृति

भारत को अपनी रक्षा करनी होगी और इसके लिए उसे अपने सांस्कृतिक विधि–विधानों का इस प्रकार नया निर्माण करना होगा कि उसके प्राचीन आदर्श को अधिक तेजस्वी, अधिक घनिष्ठ एवं पूर्ण रूप से प्रकट करें। फिर उसे अपने आक्रमण के द्वारा इस प्रकार उन्मुक्त ज्योति की लहरों के आत्मप्रसारी विजयी चक्करों के रूप में उस समस्त जगत् के ऊपर फैला देना चाहिए, जिसे एक बार उसने सुदूर युगों में अधिकृत किया था या कम–से–कम प्रकश प्रदान किया था।

–भारतीय संस्कृति के आधार, पृ0 17

भारतीय संस्कृति आरम्भ से ही एक आध्यात्मिक एवं अंतर्मुख धार्मिक दार्शनिक संस्कृति रही है और बराबर ऐसी ही चली आयी है। उसमें और जो कुछ भी है वह सब इस एक प्रधान और मौलिक विशेषता से ही उद्भूत हुआ है अथवा वह किसी न किसी प्रकार इस पर आश्रित या इसके अधीन ही रहा है, यहां तक कि वाह्य जीवन को भी आत्मा की आभ्यंतरिक दृष्टि के ही अधीन रखा गया है।

–भारतीय संस्कृति के आधार, पृ0 67

भारतीय संस्कृति यह मानती है कि आत्मा ही हमारी सत्ता का सत्य है और हमारा जीवन आत्मा की एक अभिवृद्धि अैर विकास है। वह सनातन, अनन्त, परम एवं सर्व को देखती है, वह इसे सब कुछ के निगूढ़ सर्वोच्म आत्मा के रूप में देखती है, वह इस सर्वोच्च आत्मा को ही ईश्वर, शाश्वत, सद्वस्तु के नाम से पुकारती है, और मनुष्य को वह प्रकृतिगत परमात्मा की इस सत्ता को अंशभूत आत्मा एवं शक्ति के रूप में देखती है।

–भारतीय संस्कृति के आधार, पृ0 189

नयी मानवजाति का ध्वजावाहक

हमारी पुकार युवा भारत के नाम है। युवकों को ही नवीन जगत् का निर्माता होना चाहिये, उन लोगों के नाम नहीं जो प्रतियोगितावादी व्यक्तिवाद को, पूंजीवाद या पश्चिम के जड़वादी साम्यवाद को भारत का भावी आदर्श मानते हैं, उन लोगों के नाम भी नहीं जो पुराने धार्मिक विचारों के दास बने हुए हैं और आत्मा के द्वारा जीवन की स्वीकृति और उसके रूपांतर को स्वीकार नहीं कर सकते, बल्कि उन सबके नाम है जो मन और हृदय में पूर्णतर सत्य को स्वीकार करने के लिये स्वतंत्र हैं और महत्तर आदर्श के लिये परिश्रम करने को तैयार हैं। वे ऐसे लोग होने चाहियें जो अपने–आपको भूत या वर्तमान के प्रति नहीं, भविष्य के प्रति समर्पित करने के लिये तैयार हों। उन्हें अपने जीवन का उत्सर्ग अपने निम्नतर अहं को लांघ सकने के लिये, अपने अंदर और सभी व्यक्तियों में भगवान् को चरितार्थ करने के लिये करना चाहिये; राष्ट्र और मानवजाति के लिये अथक परिश्रम और पूरे मन से उन्हें अपना उत्सर्ग कर देना चाहिये। यह आदर्श तभी एक छोटा–सा बीज और एक छोटे से नाभिक को मूर्त रूप देनेवाला जीवन हो सकता है, परंतु हमारी निश्चित आशा है कि यह बीज बढ़कर एक महान् वृक्ष और यह नाभिक सदा विस्तृत होता हुआ निर्माण बनेगा। हमें प्रेरणा देनेवाली आत्मा पर अंतरंग विश्वास के साथ हम उस नवीन मानवजाति के ध्वज–वाहकों में अपना स्थान लेते हैं जो संसार की अव्यवस्था और विघटन के बीच जन्म लेने के लिये प्रयत्नशील हैं, उस भावी भारत के लिये, उस बृहत्तर भारत के पुनर्जन्म के लिये जो प्राचीन मां के महान् परंतु जीर्ण–शीर्ण शरीर का कायाकल्प कर देगा।

एक महान् पंरपरा

भारतीय सभ्यता अपने रूप और अपनी अभिव्यक्ति में मानवजाति की किसी भी ऐतिहासिक सभ्यता के जितनी ही महान् रही है। धर्म में महान्, दर्शन और विज्ञान में महान्, नाना प्रकार के विचारों और साहित्य में महान्, कला, काव्य, सामाजिक और राजनैतिक संगठन में महान्, कौशल व्यापार और वाणिज्य में महान् रही है। कौन–से क्षेत्र में भारत ने प्रयास नहीं किया, उपलब्धि नहीं की और सृजन नहीं किया और वह भी बड़े पैमाने पर, बड़े विस्तार और सावधानीपूर्वक पूर्णता के साथ? उसकी आध्यात्मिक और दार्शनिक प्राप्ति के बारे में सचमुच कोई प्रश्न नहीं हो सकता. . .. . .लेकिन अगर उसके दर्शन, उसके धार्मिक अनुशासन, उसके महान् आध्यात्मिक व्यक्तियों की सूची, उसके विचारों, संस्थापकों संतों की सूची उसकी महानता महिमा है, जैसा कि उसके स्वभाव और शासक विचार के लिये स्वाभाविक था, ये उसकी एकमात्र महिमा नहीं हैं और न ही इनकी महिमा से दूसरे ठिगने हो जाते हैं। अब यह प्रमाणित हो गया है कि आधुनिक काल से पहले वह यूरोप के किसी भी देश से भौतिक विज्ञान में आगे था और यूरोप भी भौतिक विज्ञान में भारत का उतना ही ऋणी है जितना यूनान का, यद्यपि सीधी तरह से नहीं बल्कि अरबों के द्वारा। अगर वह केवल इतनी ही दूर गया होता तो यह भी प्राचीन संस्कृति में शक्तिशाली बौद्धिक जीवन का पर्याप्त प्रमाण होता। विशेष रूप से गणित, ज्योतिष और रसायन में जो प्राचीन विज्ञान के मुख्य तत्त्व थे, उसने बहुत–सी चीजों की खोज की और उन्हें अच्छी तरह सूत्रबद्ध किया, विवेचन और परीक्षण की शक्ति द्वारा ऐसे वैज्ञानिक विचारों और खोजों का पहले से ही पता लगा लिया जिन तक यूरोप बहुत बाद में पहुंच पाया, लेकिन यूरोप अपनी नूतन और पूर्णतर पद्धतियों के द्वारा उन्हें ज्यादा दृढ़ता के साथ प्रतिष्ठित कर पाया। भारत शल्य–क्रिया में भली–भांति सुसज्जित था और उसका चिकित्साशास्त्र आज भी मूल्यवान् बना हुआ है, यद्यपि बीच में ज्ञान में उसका ह्रास हो गया था पर आज वह फिर से अपनी प्राण–शक्ति को प्राप्त कर रहा है।

राष्ट्र का निर्माण हो रहा है

आज भारत में संसार की आंखों के सामने इतनी तेजी से और इतने स्पष्ट रूप से एक राष्ट्र बन रहा है कि सभी उसकी प्रक्रिया को देख रहे हैं और जिन्हें सहानुभूति और अंतर्ज्ञान प्राप्त है, जो कार्य करने वाली शक्तियों में फर्क कर सकें, काम में आने वाली सामग्री को पहचान सकें वे दिव्य स्थपत्य की लकीरों को पहचान सकते हैं। यह राष्ट्र एक नयी जाति नहीं है जो प्रकृति के कारखाने में से नयी–नयी निकलकर आयी हो या जिसे आधुनिक परिस्थियों ने बनाया हो। सबसे पुरानी जातियों में से एक, पृथ्वी की प्राचीनतम संस्कति, प्राण–शक्ति में सबसे बढ़कर दुर्दमनीय, महानता में सबसे अधिक उर्वर, जीवन में सबसे गहरी, संभाव्यता में सबसे अद्भुत, अपने अंदर बल के अनेक उत्स, विदेशी रक्त के अनेक उपभेदों और मानस संस्कृति के नाना प्रकारों को लेकर यह अब अपने–आपको सदा के लिये सुसंगठित राष्ट्रीय इकाई में उठाने का प्रयास कर रही है। पहले सजातीय जातियों के समूह को एक जीवन और एक संस्कृति में ढालकर, सदैव इस तात्त्विक ऐक्य के विधान के द्वारा एकता की ओर प्रवृत्त होकर, सदा अपनी उर्वरता के अतिरेक द्वारा नवीन विभिन्नताओं और विभाजनों को पैदा करते हुए यह अभी तक स्थायी रूप से महाद्वीप के संगठन में आनेवाली बाधाओं को नहीं जीत पायी है। अब समय आ गया है जब इन बाधाओं को पार किया जा सकता है। अपने लंबे इतिहास में हमारी जाति जो प्रयास करती आयी है अब वह उसे पूरी तरह नयी परिस्थितियों में करेगी। पैनी दृष्टि से देखनेवाला उसकी सफलता की भविष्यवाणी कर देगा क्योंकि महत्त्वपूर्ण अड़चनें या तो हटा दी गयी हैं या दूर किये जाने की प्रक्रिया में हैं। लेकिन हम और आगे जाते हैं और यह मानते हैं कि इसका सफल होना अवश्यंभावी है क्योंकि भारत की स्वाधीनता, उसकी एकता और महानता अब संसार के लिये जरूरी हो गयी है।

प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य

अपने छोटे–से अहंकारमय व्यक्तित्व से ऊपर उठ जाओ और भारत माता के योग्य बालक, बनो, अपने कर्तव्यों को ईमानदारी और आर्जव से पूरा करो और हमेशा प्रसन्न रहो और भगवान् की कृपा पर स्थिर विश्वास रखो।

इस समय भारत की सबसे पहली समस्या है अपनी अंतरात्मा को पुनः प्राप्त करना और प्रकट करना।

अपने चैत्य व्यक्तित्व के बारे में सचेतन होओ। अपनी चैत्य सत्ता को भारत की आत्मा में अत्यधिक रस लेने दो और उसके लिये सेवा–भाव से अभीप्सा करो; अगर तुम सच्चे हो तो तुम सफल होगे।

युवक और भविष्य

यदि भारत का उत्थान होना है तो भारतीय युवकों की अपनी नियति के प्रति जागना चाहिये। ''अदभुत प्रभात के सूर्य–चक्षु बालक'' कब तक सोते रहेंगे?

भविष्य युवकों के हाथ में है।

भविष्य युवकों के हाथ में है। एक युवा और नवीन जगत् विकास की प्रक्रिया में है और युवकों को उसका सृजन करना चाहिये। परन्तु यह सत्य, साहस, न्याय, महान्, अभीप्सा और निष्कपट पूर्णतया का जगत् है जिसका हम सृजन करना चाहते हैं। भीरू स्वार्थी, आरम्भ में बकबक करनेवाले और बाद में अपने साथियों को भटकता छोड़नेवाले का भविष्य में कोई स्थान नहीं है . . . केवल बहादुर, स्पष्टवक्ता, स्पष्ट हृदय, शूर और अभीप्सा करनेवाला युवक ही वह एकमात्र आधार है जिसपर भावी राष्ट्र खड़ा हो सकता है . . .।

दूसरी बात यह है कि वे बस अपने चुनाव पर ही डटे न रहें बल्कि अपने साथियों के साथ भी लगे रहें। जब तक िकवे अपने अंदर सामूहिक भावना और स्वमान का ऐसा भाव न उत्पन्न कर लें जो अपने साथियों की बलि देकर अपने–आपको बचाने से इंकार करता है, जब कि साथ मिलकर खड़े रहने से उस बलि को रोका जा सकता हैं। आयु में बढ़ जाने पर वे उस काम में योग्य न रहेंगे जो उन्हें करना चाहिये। वे जो कुछ करें, उसे मिलकर करें, वे जो कुछ सहन करें उसे मिलकर सहें, भीरू और चिकिचिकानेवाले को छोड़ दें, परन्तु एक बार जब वे सुसंबद्व हो जाये तो किसी हालत में अपनी सुसंबद्धता को न छोड़ें, कोई चीज उसे तोड़ने न पाये।

अरविन्द–एक राष्ट्रीय पत्रकार

श्री अरविन्द ने पत्रकारिता के क्षेत्र में आश्चर्यजनक ख्याति अर्जित की। उनका एक–एक लेख ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कि शीघ्र ही ब्रिटिश शासन की नींव भारत से हिलने वाली है। यद्यपि श्री अरविन्द की समस्त शिक्षा इंग्लैण्ड में ही हुई थी और 1893 में जब वह भारत आये उस समय तक कोई भी भारतीय भाषा नहीं जानते थे। 23 वर्ष की उम्र में उन्होंने अपनी मातृभाषा बंगाली सीखनी शुरू की थी और इसी के साथ–साथ संस्कृत, मराठी एवं गुजराती का भी अध्ययन शुरू किया। परन्तु सिर्फ अंग्रेजी भाषा एक ऐसा माध्यम थी जिसे उन्होंने अपने भावों को व्यक्त करने के लिये चुना। अंग्रेजी भाषा में उन्होंने तभी कविता लिखनी शुरू कर दी थी जब वे 1886 में लन्दन के एक स्कूल में थे।

भारत में आने के प्रथम वर्ष में ही श्री अरविन्दों साप्ताहिक मासिक पत्रिकाओं में लेख देने में तेजी से व्यस्त हो गये थे। उन दिनों वह बड़ौदा राज्य की नौकरी करते थे अतः लेख अपने नाम से न लिखकर गुमनाम से लिखते थे। 1893–94 के दौरान उन्होंने बहुत से लेख सामान्य शीर्षक 'पुरानों के लिये नये दीप' के अन्तर्गत 'इन्दु प्रकाश' बम्बई के मराठी पत्र को दिये। श्री अरविन्द के 'पुरानों के लिये नये दीप' लेख बहुत उच्च कोटि के थे। श्री अरविन्द के अपने शब्दों के पुरानों के लिये नये दीप' नामक शीर्षक

भारतीय सभ्यता को प्रकट नहीं करता बल्कि कांग्रेस की नीतियों को प्रकट करता है, वह अलाउद्दीन की कहानी के रूप में प्रकट नहीं किया गया, वरन् कांग्रेस के पुराने और मुरझाये हुए सुधारवादियों को नया प्रकाश प्रदान करके, परिवर्तित करने के लिये ही लिखे गये थे।

श्री अरविन्द के लेख शीर्षक के अनुसार उपयुक्त थे। उनका प्रथम लेख भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा तब निर्धारित नीतियों पर सीधा–सीधा प्रहार प्रदर्शित करता था और भारतीय जनता को देश को आज़ाद कराने के लिये एक स्पष्ट पुकार देता था। ऐसा बताया जाता है कि महान् उदारवादी नेता महादेव गोविन्द रानाडे ने 'इन्दु प्रकाश' के संचालक को चेतावनी दी कि यदि लेखों का क्रम इसी प्रकार और इसी भाषा में चलता रहा तो उनके ऊपर एक द्रेशद्रोह अभियोग चलाया जा सकता है। इसलिये संचालक के कहने से 'पुरानों के लिये नये दीप' नामक शीर्षक की मूल योजना को बदलना पड़ा। श्री अरविन्द बड़ी मुश्किल से इस लेखमाला को परिवर्तित करके चलाने को राजी हुए क्योंकि वह इस पर बहुत दृढ़ थे। श्री अरविन्द के द्वारा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ऊपर लिखे गये 11 लेखों में से केवल 9 ही प्राप्त हो सके। यह 9 लेख प्रो0 हरिदास एवं उमा मुकर्जी द्वारा लिखित पुस्तक 'श्री अरविन्दोज पोलिटिकल थाट' से प्राप्त होते हैं। कांग्रेस के ऊपर लिखे गये लेखों का समाचार '' इन्दु–प्रकाश' की 6 मार्च 1894 की प्रति में प्रकाशित हुआ। श्री अरविन्द ने बंकिम चन्द्र चटर्जी के ऊपर इसी प्रकार के नौ लेख 'इन्दु–प्रकाश' में 16 जौलाई से 24 अगस्त 1994 तक दिये।

श्री अरविन्द की देशभक्ति पूर्ण भावनाओं की अभिव्यक्ति, उनके द्वारा अपनी पत्नी को लिखे गये अक्टुबर 1905 के पत्र से स्पष्ट होती है–यदि एक राक्षस मेरी मां की छाती पर बैठता है तो क्या मेरा यह परम् कर्त्तव्य नहीं है कि मैं अपनी मां की रक्षा के लिये दौडू। इसी प्रकार की एक भावना में उन्होंने कहा कि भारतीयों को राजीनतिक प्रश्न के समीप आना चाहिये उनका परम कर्तव्य है मातृभूमि की रक्षा करना और इस परम् उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये उन्हें कठिन से कठिन कार्य करने को तैयार रहना है। बिना इस सोच विचार के कि इसमें सफलता या असफलता प्राप्त होगी।
श्री अरविन्द 'दैनिक वन्दे मारतम्' प्रत्रिका के सम्पादक, जो 1890 में कलकत्ता से प्रकाशित होती थी। उन्होंने लिखा है– 'हमारे और विदेशियों के बीच में किसी समझौते पर पहुंचना असम्भव है। दोनों लोग एक साथ नहीं रह सकते या तो हम रहेंगे या वे। इंग्लैड का कानून पाशविक बल पर आधारित है। यदि हम अपने आपको स्वतंत्र करना चाहते हैंतो हमें भी उसी बल का प्रयोग करना पड़ेगा। हमारे देश में अंग्रेजों की जनसंख्या केवल एक लाख है, प्रत्येक जिले में उनकी संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है। अतः यदि हमारा दृढ़ संकल्प हो तो हम ब्रिटिश शासन को एक दिन में समाप्त कर सकते हैं। इसके लिये जो तरीका है, वह मारो और करने का है।

वन्दे मारतम् में अरविन्द का निष्क्रिय प्रतिरोध पर धारावाहिक लेख 23 अप्रैल 1907 को पूरा हुआ था। श्री अरविन्द अपने व्यस्त जीवन में किस प्रकार कार्य करते थे, उसकी एक झलक, सह–सम्पादक श्याम सुन्दर चक्रवर्ती ने प्रस्तुत की है–
इस प्रकार 'वन्दे–मारतम्' में जो लेख प्रकाशित होते थे उससे वन्दे मारतम् बहुत शीघ्र ही एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र बना गया, उसके प्रेरण पूर्ण सन्देश घर–घर पहुंचने लगे। इस पत्र का सारा आर्थिक और सम्पादकीय मार श्री अरविन्द के कन्धों पर आ पड़ी सरकार पहले ही से आशंका कर रही थी और अब वह इस बात का अवसर ढूंढने लगी कि अरविन्द को उनकी इस नई जगह से कब और कैसे हटायें। राजद्रोह के दो मामले उन पर चला दिय गये–एक तो 'युगान्तर में 26 जुलाई 1907 को प्रकाशित लेख के वन्दे मारतम् में पुनः प्रकाशन के सम्बन्ध में था और दूसरा– पालिटिक्स फार इण्डियन। राजनीति और भारतीय लेख जो वन्देमातर्म के 27 जून 1907 के अंक में प्रकाशित हुआ था जिसका उपसंहार इन शब्दों में किया गया था ''मि0 मारले यह सोचते हैं कि यदि अंग्रेज भारत छोड़ कर चले गये तो वह प्रशासन नहीं कर सकते, वह वास्तव में ऐसा कभी नहीं करेंगे परन्तु यदि हम उन्हें शक्ति के द्वारा भारत से निकाल दें तब हम अपना कार्य स्वयं करने के योग्य होगें क्योंकि उन्हें भारत से निकाल कर हम अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर, यह सिद्ध कर देंगे कि हममें स्वयं शासन करने की योग्यता है। . . . यह सरकार बहुत तेजी के साथ बुराईयों की सरकार बनती जा रही है।

वन्दे मातर्म' पर मुकदमा चलाये जाने से यह पत्र और इसके मुख्य प्रेरक और अग्रलेख–लेखक सहसा जनता की नजरों में बड़ा प्रमुख स्थान और प्रसिद्धी पा गये। मेधावी लेखक और इस दैनिक के पीछे बैठी हुई उत्कृष्ट आत्मा और पत्र में प्रकाशित विचारधारा राष्ट्र के लिये पूज्य बन गई। बादलों के पीछे सूर्य जिस प्रकार खुले आकाश में आकर पूरी दीप्ति के साथ चमक उठता है उसी तहर 'युगान्तर' भी व्यापक जन–दृष्टि में आ गया। श्री अरविन्द अब परदे के पीछे रहकर काम नहीं कर सके और अगले तीन वर्षो के लिये उनका जीवन खुले तथा विख्यात रूप में सबके सामने आ गया, हालांकि श्री अरविन्द का स्वभाव इस तरह की प्रसिद्धि के अनुकूल नहीं था। एक बार उन्होंने कहा भी था किवह ख्याति को तभी सहन करते हैं जब वह सच्चाई के लिये जरूरी होती है।
श्री अरविन्द ने अलीपुर बम केस में मुक्त होने के तुरन्त बाद एक नई साप्ताहिक पत्रिका 'कर्मयोगिन' जो कि उनमें पैदा हुये नये आध्यात्मिक विचारों और भावनाओं को प्रकट करने की एक प्रकार से वाहन थी प्रारम्भ की। श्री अरविन्द ने बंगाली साप्ताहिक 'धर्मा' अगस्त 1909 में इसी उद्देश्य के लिये प्रारम्भ की थी। 31 जुलाई 1909 की कर्मयोगिन की छटी प्रति में श्री अरविन्द ने 'मेरे

देशवासियों' के नाम एक खुली चिट्ठी प्रकाशित करायी जिसे वह अपना अन्तिम राजनीतिक मृत्यु लेख ओर वसीयत–नामा समझते थे। इससे सरकार का रूख भी प्रभावपूर्ण ढंग से बदल गया। इसमें उन्होंने उग्र राष्ट्रवादियों को साहस दिलाते हुए कहा कि उन्हें नेताओं के आने या जाने से नहीं घबड़ाना चाहिये, उन्होंने कहा– 'हर बड़े आन्दोलन भगवान के भेजे नेता के लिये बाट देखते है, वह नेता भगवान की शक्ति का स्वेच्छा के साथ माध्यम बना जाता है और जब वह आ जाता है तो ऐसे आन्दोलन विजयोल्लास के साथ सफलता की ओर बढ़ते है।. . . इसलिये भविष्य की रक्षक। नेशनलिस्ट पार्टी। को आने वाले व्यक्ति के लिये प्रतीक्षा करनी होगी। . . . 'यह लेख श्री अरविन्द के आन्दोलन का अन्त सा प्रतीत हुआ, पर बाद के कुछ महीनों फरवरी 1910 तक वे अपना काम पहले की तरह करते रहे। वन्दे मातरम्, धर्म, ओर कर्मयोगिन के वह सम्पादक रहे। यत्र–तत्र वह विभिनन पत्रिकाओं में बिना अपना नाम दिये हुये लेख और सम्पादकीय भी देते रहे। राष्ट्रीय आन्दोलन के इस काल में अपने लेखों और पत्रकारिता के माध्यम से उनका स्वरूप जो जनसाधारण के सामने आया उसने श्री अरविन्दो को राष्ट्रीय पत्रकारों की प्रथम–श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया और उनका लोहा अंग्रेजी सरकार के पत्र और प्रशासन भी मानने लगे। एक राष्ट्रीय पत्रकार का सबसे आवश्यक गुण राष्ट्रीय चेतना को जगाना है श्री अरविन्दो ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को तो जगाया ही उन्होंने सोये हुये भारत को सर्फ के समान फुंकारने की शक्ति भी दी।

राष्ट्रीय पत्रकार का दूसरा आवश्यक गुण राष्ट्र के लिये अच्छे जीवन को खोज करना है। श्री अरविन्द इस कसौटी पर खरे उतरते हैं, उन्होंने भारतवासियों को गुलामी के जीवन को छोड़कर स्वतंत्रता के सही मार्ग को खोजने और उस पर चलने की प्रेरणा दी, उन्होंने जनसाधारण के मन में वर्तमान के प्रति विद्रोह और भविष्य का निर्माण करने के लिये परिवर्तन की भूख जगाई। उन्होंने 1893 में भारत आने के बाद से एक क्षण भी अपने व्यक्तिगत जीवन की चिन्ता नहीं की और हमेशा राष्ट्रीय हित में लगे रहे।

राष्ट्रीय पत्रकारिता का तीसरा एवं आवश्यक लक्षण स्वतंत्र पत्रकारिता है। दासता की जंजीरों में जकड़े हुए भारत में चाटुकारिता और प्रकासन की प्रशंसा पत्रकारिता समझी जाती थी। लोकमान्य तिलक के 'मरहटा' एवं केसरी 'स्वतंत्र विचारों, आत्म गौरव, सत्य के प्रतिपादन और निर्भीकता के अद्भुत उदाहरण थे। इसी प्रकार श्री अरविन्द ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से, पत्रकारिता के स्वतंत्र अस्तित्व को जीवित रखा और कभी भी किसी दबाब के सामने मुझे नहीं चाहे उन्हें उसके लिये कितना भी बड़े से बड़ा कष्ट उठाना पड़ा।

श्री अरविन्द एक राष्ट्रीय पत्रकार के रूप में अग्रणी और सर्वमान्य ही नहीं, वे प्रतीक के रूप में है। उन्होंने अपने लेखों और पत्रकारिता के माध्यम से नवचेतना तो जाग्रत की ही नवयुवकों और देश को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। पत्रकारिता में निर्भीकता का परिचय दिया, नीति, विचार और दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने पर साहस रखा जो कुछ कहा उसे सत्य मानकर कहा, उसके लिये कभी पश्चाताप या दुःख प्रकट नहीं किया। बड़ी से बड़ी हानि होने पर या कष्ट होने पर भी वह विचलित नहीं हुये और हर संकट का सामना करने को तत्पर हुए। पत्रकारिता के क्षेत्र में तिलक को छोड़कर और कोई दूसरा उनकी बराबरी नहीं कर सकता।

राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचारक– श्री अरविन्द

जिस समय श्री अरविन्द बड़ौदा शिक्षा विभाग में थे, बंगाल में राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन जारी हो गया, बंग विच्छेद से उत्पन्न हुई स्वाधीनता की भावना के अनेक परिणामों में से एक यह भी था कि देशवासियों का ध्यान राष्ट्रीय शिक्षा की ओर तीव्रता से बढ़ा बंगाल विभाजन से पूर्व लार्ड कर्जन की शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण स्थापित किये जाने के विरोध में भारतीय विद्यालयों में राष्ट्रीय शिक्षा दिये जाने के सम्बन्ध में विचार–विमर्श होने लगा था। विद्यालयों एवं कालेजों का स्वरूप राष्ट्रीय हो, इसके लिये देश व्यापी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था।

स्वदेशी आन्दोलन के प्रारम्भ होने पर 1905 के बनारस कांग्रेस अधिवेशन में गोपालकृष्ण गोखले ने राष्ट्रीय शिक्षा के प्रस्ताव को बड़ी चतुराई से लागू होने से रोक लिया था। परन्तु बंगाल में राष्ट्रीय शिक्षा के बढ़ते हुए आन्दोलन के कारण 1906 को कलकत्त कांग्रेस में राष्ट्रीय शिक्षा का प्रस्ताव दादा भाई नौरोजी के नेतृत्व में पारित हो गया जिसके परिणाम–स्वरूप देश में महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संस्थायें उभर कर सामने आई। बनारस का हिन्दू कालेज, क्वीन्स कालेज। एनी बेसेन्ट द्वारा, कलकत्ता के राष्ट्रीय संस्थान बी०सी० पाल के द्वारा, गुरूकुल कांगड़ी हरिद्वार, स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा और राष्ट्रीय शिक्षा प्रचार समिति दक्षिण में तिलक के द्वारा तथा लाहौर का डी०ए०वी० कालेज राष्ट्रीय शिक्षालयों के रूप में बनाये गये जिनमें स्वदेशी, शिक्षाओं को सम्मलित कर दिया गया था।

21 जनवरी 1908 के केसरी में श्री अरविन्द घोष का एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होने बंगाल में राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप और प्रसारण की विस्तृत चर्चा की थी और उन सभी व्यक्तियों को चेतावनी दी थी जो भारत में जाति, धर्म और अन्य विभिन्नताओं के कारण राष्ट्रीय शिक्षा की स्थापना के प्रति सन्देहात्मक थे। उन्होने स्पष्ट शब्दों में लिखा था– भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति अन्य देशों की अपेक्षा विश्व में उसके अलग अस्तित्व को घोषणा करती है ...., जब इटली अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है केवल तीस वर्षो में ...... हमें जापान से शिक्षा लेनी चाहिये, राष्ट्रीय भावनाओं को जगाना चाहिये, अपने महत्त्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख करना चाहिये .... यह तभी सम्भव हो सकता है जब हमारा दृष्टिकोण बदल जाये और हम अपने देश में महान् दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों और सेनानायकों को जन्म दे सकें। बंगाल में राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन को इसी आदर्श को ध्यान में रखकर चलाया गया।

निष्कर्ष

श्री अरविन्द ने शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। बड़ौदा में रहते हुये ही उन्होने प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्वति के अनुरूप शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया था जिसका अर्थ था कि शिक्षक श्रमजीवी की तरह छात्रों को शिक्षा न देकर गुरू एवं शिष्य के सम्बन्धों को अपनाता था जिससे गुरू एवं शिष्य में निकटता का सम्बन्ध स्थापित हो सके और आवश्यकता पड़ने पर शिक्षक नन्द साम्राज्य का विनाश करने के लिये कोई चन्द्रगुप्त पैदा कर सके और स्वयं चाणक्य की भूमिका निभा सके। बंगाल की एजूकेशनल सोसायटी के माध्यम से एवं स्वयं सक्रिय राजनीति में आने के बाद वह भारत में एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का निर्माण करना चाहते थे जो ब्रिटिश नौकरशाही के प्रभाव से मुक्त हो, आत्मनिर्भर हो और राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण कर सके। छात्रों को देश–प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना से ओत प्रोत किया जा सके और सरकारी नौकरियों के प्रति उनके झुकाव को कम किया जा सके। इन स्कूलो का मुख्य उदेश्य एक ओर ऐसे विद्यार्थियो को पनाह देना था जिन्हें देश–भक्ति के कारण स्कूलों से निष्कासित कर दिया हो और शिक्षा संस्थाओं के द्वारा उनके लिये बन्द हो गये हों तथा दूसरी ओर मातृभूमि के प्रति देशभक्ति जगाने और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये सर्वस्व न्यौछावर करना। श्री अरविन्द राष्ट्रीय विद्यालय के माध्यम से जापान के समान देश को शिक्षा प्रणाली को बनाना चाहते थे, जहां प्राचीनता एवं आधुनिकता का संगम था। वह ठीक इसी प्रकार भारत के प्राचीन धर्म, दर्शन और परम्पराओं को सुरक्षित रखना चाहते और दूसरी ओर वैज्ञानिक प्रगति से होने वाले लाभों से भारत का आधुनिकीकरण करना चाहते थे। इसलिये वह डिग्री और प्रमाण–पत्रों के पक्ष में नहीं थे। शिक्षा प्रसार में वह शिक्षा के उस प्रमुख उद्देश्य को लेकर चले, जिसमें अन्धकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश प्रदान करके अज्ञानता को समाप्त करना था। मुनष्य को पूर्ण मनुष्य बनाना और उसकी चौमुखी प्रतिभाओं में विकास करना, उनकी शिक्षा प्रसार का एकमात्र उदेश्य था। उनके प्रयास से केवल बंगाल हो नहीं जागा बल्कि राष्ट्रीय शिखा की लहर देश के कोने–कोने में फैल गई जिसने आगे चलकर कांग्रेस आन्दोलन को बहुत बड़ी संख्या में स्वयं सेवक प्रदान किये। अन्त में यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि श्री अरविन्दो और उनकी राष्ट्रीय शिक्षा की नीति में स्वतंत्रता के लिये स्वयं सेवकों की एक सेना तैयार की जिनके सक्रिय सहयोग से भारत को आजादी प्राप्त हो सकी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पुरानी, ऐ. बी –द लाईफ ऑफ श्री औरबिन्दो, पौन्डिचैरी, औरबिन्दो आश्रम, फर्सट एडिशन, 1955।
2. रॉय चौधरी –सी.ऑर.दास एण्ड हिज आईम्स गीता बुक हाउस, मायसूर, 2002
3. सागी.पी.डी –लाईफ एण्ड वर्क ऑफ लाल, बाल, पाल, दिल्ली 1988
4. शर्मा. के.के –लाईफ एण्ड टाईम ऑफ लाला लाजपत राय, इन्डियन बुक एजेन्सी, अम्बाला कैण्ड, जुलाई 1988
5. सीता रमय्या.वी.पी –द हिस्ट्री ऑफ इन्डियन नेशनल कांग्रेस, फर्स्ट वॉलयूम 1946 सोर्स मैटीरियल फॉर अ हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमैन्ट इन इन्डिया वाल्यूम सैकेन्ड (1885–1920) बाम्बे 1958
6. थोमनकर, डी.वी. –लोकमान्य तिलक फादर ऑफ इन्डियन आनरेस्ट एण्ड मेकर्स ऑफ मार्डन इन्डिया, लन्दन, मुदरे, 1986
7. त्रिपाठी अमालेस –द एक्सट्रेमिस्ट चैलेन्जेस इन इन्टिया, बिटवीन 1890–1920, बाम्बे, लोंगमन्स, 1967
8. वर्मा.डी.वी. –द पॉलिटिकल फिलॉसिफी ऑफ श्री औरोबिन्दो बाम्बें, एशिया, 1960
9. वास्ती, एस. आर. –लार्ड मिन्टो एण्ड द इन्डियन नेशनलिस्ट मूवमैन्ट 1905–1920